तुलसी की भाषा

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित ब्रज एवं अवधी दोनों साहित्यिक भाषाओं में रचनाएँ की हैं। उनकी सम्पूर्ण रचनाओं में से 'श्रीकृष्ण गीतावली', 'कवितावली', 'विनय-पत्रिका', 'गीतावली', 'दोहावली' तथा 'वैराग्य संदीपनी' ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखे गये हैं और 'रामचरितमानस', 'रामलला-नहछू', 'बरवै रामायण', 'पार्वती-मंगल', 'जानकी-मंगल' तथा 'रामाज्ञा प्रश्न' अवधी भाषा की रचनाएँ हैं। तुलसी की दोनों भाषाओं के शब्द भण्डार का अध्ययन करने के लिए उन्हें सुविधा की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. संस्कृत के तत्सम शब्द,
2. मध्यकालीन पालि, प्राकृत अपभ्रंश आदि के शब्द,
3. विदेशी शब्द,
4. तत्कालीन प्रान्तीय भाषाओं के शब्द,
5. हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द।

(1) संस्कृत के तत्सम शब्द–तुलसी की रचनाओं में संस्कृत के तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तुलसी ने कुछ पद तो पूर्णतया संस्कृत में ही लिखे हैं; जिनमें संस्कृत के

तत्सम शब्दों को ही अपनाया गया है। जैसे—'वर्णनामर्थ संघानां रसानां छन्दसामपि' अथवा 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपं' आदि। इसके अतिरिक्त कुछ पदों का निर्माण तुलसी ने हिन्दी-संस्कृत की मिश्रित पदावली द्वारा किया है और उसमें भी संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता है। जैसे—'विनय-पत्रिका' में 'श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भवभय दारुनं' अथवा 'जयति मरुदंजनामोद मन्दिर नतग्रीव-सुग्रीव दुःखैक बन्धो' आदि। तीसरे, तुलसी की अन्य ब्रज एवं अवधी की रचनाओं में भी पर्याप्त संस्कृत के तत्सम शब्द मिल जाते हैं; जैसे—'भद्रदाताऽसमाकं', 'नौमि श्रीरामसौमित्रि सांक', 'सुमिरामि नर भूपं रूपं', 'वल्लभं', 'दुर्लभं', 'करुनाकरं', 'भुवनैकभर्त्ता', 'जयति वैराग्य विज्ञान वारांनिधे', 'नौमिजनक सुतावरं', 'भक्ति वैराग्य-विज्ञान समादान-दम नाम-आधीन साधन अनेक' आदि। इस प्रकार तुलसी के काव्यों में संस्कृत पदावली का व्यवहार स्तोत्र एवं स्तुतियों में तो मिलता ही है, उनके अतिरिक्त भी तुलसी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सबसे अधिक मात्रा में अपनाया है।

(2) पालि, प्राकृत अपभ्रंश आदि के शब्द—तुलसी के काव्यों में पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। प्रायः वीर, रौद्र या भयानक रस का निरूपण करते समय तुलसी ने उक्त भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है। क्योंकि इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों के अन्तर्गत द्वित्व वर्णों का प्राधान्य होने के कारण उक्त रसों के लिए ये शब्द बड़े सहायक होते हैं। इसलिए तुलसी ने भट्टा, घट्टा, चमंकहि, दमंकहिं, कटकट्ट कट्ठहिं, दपट्टहिं, खग्ग, अलुज्झि, जुज्झ, उर्वि, गुर्वि, पब्बै बिदरनि, उच्छलित, मर्दि, लक्ख, पक्खर, तिक्खन, अच्छ, कच्छ, विपच्छ, कुम्भकरन्न, बोल्लहिं, डोल्लहिं रघुप्पति, दसरथ्य, लक्खन, परब्बत आदि का प्रयोग किया है। इन शब्दों के कारण नाद-सौन्दर्य के साथ-साथ ओजगुण एवं रौद्र तथा वीर रस की व्यंजना में बड़ी सहायता मिली है।

(3) विदेशी भाषाओं के शब्द—तुलसी की समन्वयात्मक प्रवृत्ति होने के कारण उन्होंने भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त नित्यप्रति व्यवहार में आने वाले कितने ही अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी अपने काव्यों में अपनाया है। इसी कारण तुलसी ने गरूर, गुमान, गुनी, गरीब, साहेब, रहम, गरीब-निवाज, गरीबी, खसम, कलई, सीपर, सबील, जहान, कागज, बखशीश, रुख, गरदन, ख्वार, शोर, हवाले, खलक, हल्क, कहरी, बहरी, विरमानी, हबूब, फहम, हलाकी, मिसकीन आदि अनेक अरबी, फारसी एवं तुर्की शब्दों का प्रयोग किया है। इनमें से कुछ शब्दों में देशी प्रत्यय लगाकर भी इन विदेशी शब्दों का व्यवहार किया गया है। जैसे—दगाई, मिसकीनता, अलायक, सरोकता, हलाकी आदि।

(4) प्रान्तीय भाषाओं के शब्द—तुलसी की रचनाओं में उत्तरी भारत के विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—दारु, नारि (गर्दन), म्हाको, मेला, सार्‌यो, पूजि, ठोंकि-ठोंकि खये आदि राजस्थानी के शब्द मिलते हैं और जून, लाधे (प्राप्त किया), मूकिये (छोड़िये), मोंगी (मौन) आदि शब्द गुजराती के मिलते हैं। ऐसे ही वैसा (बैठा), पारा (सका), खटाइ (निभाती) आदि शब्द बंगला के मिलते हैं तथा पवाँरो, अवकलत आदि शब्द मराठी के भी मिल जाते हैं।

(5) हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द—तुलसी की भाषा में ब्रज तथा अवधी बोली के शब्दों का व्यवहार तो अत्यधिक मात्रा में हुआ ही है। इनके अतिरिक्त हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द भी मिल जाते हैं। जैसे—सरल (सड़ा हुआ), दिहल (दिया), धायल (दौड़ा), सूतल (सोया), राउर, रावरी, जहबाँ, तहबाँ, लोइ, लोई (लोग) आदि भोजपुरी बोली के शब्द आये हैं;

तेरी, मेरी, तुम्हारा, हमारा, देखो तपुकिया, शरण आया, सोर मचा, लीजिए, कीजिए, गई, देना आदि खड़ी बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं और सुआर, बागत (घूमते) आदि बघेली बोली तथा छत्तीसगढ़ी के शब्द भी मिलते हैं।

शब्द-शक्तियाँ—तुलसी की भाषा में अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में मिलता है। सरल एवं सुबोध रचनाओं में तो अभिधा का ही प्राधान्य है। किन्तु मुहावरे एवं लोकोक्तियों के प्रयोग में तुलसी ने लक्षणा-शक्ति का सफल प्रयोग किया है, जिससे अर्थ गाम्भीर्य के साथ-साथ उक्ति-वैचित्र्य की भी सृष्टि हुई है। जैसे—'करत गगन को गेंडुआ', 'जारिकै हीयो', 'जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो', 'बयो लुनियतु', 'जानत हौं चारिफल चारि ही चनक को', आदि पदों में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। इसके साथ ही तुलसी में व्यंजना-शक्ति का प्रयोग भी अत्यधिक मात्रा में मिलता है। जैसे—'जेई बाटिका बसति तहँ खगमृग तजि तजि भजे पुरातन भौन' अथवा 'स्वांस समीर भेंट भइ भोरेहुँ, तेहि मग पग न धर्‌यो तिहुँ पौन' कहकर सीता की विरह-विदग्ध दशा की सुन्दर व्यंजना की गई है। ऐसे ही 'ससि तें सीतल मोको लागै माई री तरनि' कहकर तुलसी ने गोपियों की विरहावस्था की मार्मिक व्यंजना की है।

लोकोक्ति एवं मुहावरों—तुलसी की भाषा में लोकोक्ति एवं मुहावरों की भरमार मिलती है। जैसे—'धोबी कैसो कूकर, न घर की न घाट को', 'धान को गाँव पयार ते जानिय', 'खाती दीप मालिक ठठाइत सूप हैं', 'आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है', 'त्यों-त्यों होइगी गरुई ज्यों-ज्यों कामिरि भीजै', 'दूध कौ जर्‌यो पियत फूँकि-फूँकि मह्यो हौं', 'जस काछिय तस चाहिय नाँचा', 'तसि पूजा चाहिए जस देवता', 'सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ', 'बाजु सुराग कि गाँडर ताँती', 'रहन आरत के चित चेतू' आदि लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है तथा 'जैहैं बारह बाट', 'कहब जीभ करि दूजी', 'ठग के से लाडू खये', 'पानी भरी खाल है', 'मुँहलाए मूंड़हि चढ़ी', 'मींजो गुरु पीठ', 'हमहुँ कहब अब ठकुरसुहाती', 'गालु बड़ तोरे', 'खेत के से धोखे', 'छोट बदन कहहुँ बड़ी बाता', 'जीवत पाउँ न पाछे धरहीं', 'पूतरो बाँधि है', 'पिपीलिकनि पंख लागो', 'तज्यो दूध माखी ज्यों', 'कोढ़ में की खाज', 'भौतवा भौंर को हौं', 'बूझ्यौ राग बाजी ताँति', 'पाके छत जनु लाग अंगारू', 'डासत ही गई बीत निसा' आदि अनेक मुहावरों का सुन्दर एवं सजीव प्रयोग हुआ है।

इस तरह तुलसी ने विभिन्न प्रकार की लोकोक्तियों एवं मुहावरों के द्वारा सरल एवं क्लिष्ट, सरस एवं अलंकृत तथा व्यावहारिक एवं साहित्यिक भाषा का प्रयोग किया है। इसीलिए 'रामलला-नहछू' तथा 'बरवै रामायण' में यदि अवधी का ग्रामीण एवं लोक-प्रचलित रूप दिखाई देता है तो 'रामचरितमानस' में शुद्ध साहित्यिक रूप का ही प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। इस तरह 'कृष्ण-गीतावली' में ब्रजभाषा के लोक व्यवहृत रूप के दर्शन होते हैं तो 'गीतावली', 'कवितावली' तथा 'विनय-पत्रिका' में उनके शुद्ध साहित्यिक रूप को देखा जा सकता है।

सारांश यह है कि तुलसी का ब्रज और अवधी पर समान अधिकार था और इसी प्रकार तुलसी ने दोनों भाषाओं का प्रयोग बड़ी सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता एवं सफलता के साथ किया है। उनकी भाषा में कलात्मक सौन्दर्य के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक शब्दावली का प्राधान्य होने के कारण हमारे जन-जीवन का समग्र रूप विद्यमान है। तुलसी ने इसीलिए सामान्य दैनिक जीवन में प्रयुक्त वस्तुओं एवं व्यापारों का बड़ी रोचकता एवं सरसता के साथ वर्णन किया है तथा भारतीय जीवन में व्याप्त परम्परागत सांस्कृतिक कृत्यों का उल्लेख भी बड़ी तत्परता एवं सजीवता के साथ किया है। अतः तुलसी की भाषा भाव एवं

प्रसंग के अनुकूल होने के साथ-साथ हमारे सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक जीवन को चित्रित करने में पूर्ण सशक्त, समर्थ एवं सक्षम दिखाई देती है। उसमें राम-कथा साथ-साथ हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की सजीव झाँकी अंकित हुई है और जनसाधारण में व्याप्त रीति-रिवाज, त्यौहार, संस्कार, जन-विश्वास आदि का चित्रण भी बड़ी ही मार्मिकता के साथ किया गया है।